इन्द्रधनुष

ओमप्रकाश खण्डेलवाल

"श्री ओमप्रकाश खण्डेलवाल भावुक कवि हैं। वे आजीविका की दृष्टि से व्यवसायी, परन्तु मानसिक रूप से सरस्वती के उपासक हैं। उनके 'इन्द्र धनुष' शीर्षक संग्रह की कवितायें भाव की दृष्टि से भी इन्द्रधनुषी कही जांयगी। उनमें राष्ट्रीयता भी है और मनुष्य की गरिमा तथा कवि सुलभ संवेदना भी जीवन के कई रंग व्यक्त करती है।"

१७ सी, अशोक नगर
इलाहाबाद

महादेवी वर्मा

"श्री ओमप्रकाश खण्डेलवाल हिन्दी के ऐसे जीवन्त कवि हैं जिनकी रचनाओं में कविता किसी रागिनी की भाँति नृत्य करती है। साभिप्राय शब्द और ललित छन्द उनकी कविता की पहिचान है और जब वे नूतन रूपकों और बिम्बों से सजी अपनी कविता का पाठ करते हैं तो जी चाहता है कि उनकी कविता अधिक से अधिक सुनी जाय। आधुनिक हिन्दी काव्य में उनकी रचनाओं का विशिष्ट स्थान होगा। उनके गीत नये-नये उपमानों और बिम्बों से सुसज्जित होकर नये कवियों का मार्ग दर्शन करेंगे।"

'साकेत'
४, प्रयाग स्ट्रीट
इलाहाबाद

डॉ० रामकुमार वर्मा

इन्द्रधनुष

सेवा की मूर्ति
आदरणीया डॉ॰ प्रज्ञा जी
को सादर समर्पित
ओमप्रकाश
२६.११.८४

ओमप्रकाश खण्डेलवाल

अर्चना प्रकाशन, प्रतापगढ़

समर्पण

भारत माता

के

चरणों में

सादर

समर्पित

—ओमप्रकाश खण्डेलवाल

प्राक्कथन

'इन्द्रधनुष' के गीत और नवगीत अपनी भाव-प्रवणता और तदनुकूल शब्द-संगीत में कवि ओमप्रकाश खण्डेलवाल की सजग कवि-प्रतिभा का परिचय देते हैं। इन गीतों की रचना में कवि अपने देश और समाज के काल-प्रवाह के बीच अन्तर्मन से डूबा है; उसे प्रकृति के सौन्दर्य, मन की रागात्मक प्रवृत्तियों एवं देश-काल की दुर्वह परिस्थितियों ने एक साथ झकझोरा है, जिस संघर्ष में वह आनन्द भरे उद्‌गार लेकर निकलता है यह उसके कवि-मन की पहचान है।

हिन्दी में छायावादी काव्य का आरम्भ हुये आधी शती से अधिक समय बीत गया। भाव और भाषा को जो गति तथा स्निग्धता छायावादी काव्य से मिली है उसके प्रति एक अनजाना आकर्षण युवा कवियों में अब तक जागता जा रहा है। खण्डेलवाल को भी उस आकर्षण ने आक्रान्त किया है, पर इस कवि ने इस छायावादी प्रवण शैली का सदुपयोग किया है। सदुपयोग इस अर्थ में है कि उसने निराधार उड़ानें नहीं भरी हैं; लोक और जीवन के ठेठ पक्ष में अपने काव्य-सृजन का वृत्त स्थापित किया है। उसके गीतों में अब तक के अनकहे उपमानों की उपस्थिति कवि के मौलिक सृजन का परिचय देती हैं।

"....भय से दुर्घटना के
आँख खुली रहती,
अनकही कहानियाँ
अश्रु-धार कहती।
घुनघुना लगता, पर
शुष्क मैं चना हूँ।
× × ×
लगता हूँ हरा किन्तु
बांस सा घुना हूँ।"

(पृष्ठ ३३)

इन पंक्तियों में घुनघुना, शुष्क चना तथा घुना बांस हिन्दी कविता के नये उपमान हैं।

भारतीय कवि की यह विशेषता सदा से रही है कि वह बिना किसी कथा के प्रवृत्त नहीं होता। अमरुक कवि के शृंगार-मुक्तकों को भी आनन्द-वर्धन प्रबन्धायमान स्वीकार करते हैं। भारतीय कवि का यह वैशिष्ट्य छायावादी काव्य-सृजन की विपरीत स्थिति है; पर जिसका हृदय भारतीय काव्य-परम्परा से अनुप्राणित हो और वह छायावादी काव्य शैली के प्रति भी मोहग्रस्त हो, उसमें कथा-रस के सृजन की अन्त: सूत्रता कहीं न कहीं अवश्य विद्यमान हो जायगी। खण्डेलवाल की कुछ कविताएँ ऐसी हैं जो गीत होकर भी कथा-गीत हैं। इनमें कवि के अन्तर की भावना पेशल तथा सशक्त होकर पाठक को प्रभावित करती है; इन कविताओं में "सरिता के तट पर मैं वृक्ष सा खड़ा हूँ" ऐसा ही तेज प्रभाव डालती है। यहाँ अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार के द्वारा नदी के तट पर स्थित वृक्ष के माध्यम से संघर्षरत जीवन की कहानी प्रस्तुत हो गई है। कवि की ये पंक्तियाँ मार्मिक हैं :—

"....आतप में धारा पर
टकटकी लगाये;
पावस में धार स्वयं
लिपट लिपट जाये।
टूटती कगारों के
मध्य भी अड़ा हूँ।
× × ×
भार बना भू पर
जड़ शिथिल हुई थोड़ी;
इठलाती लहरों ने
कसर नहीं छोड़ी
दौड़ती हवाओं से
अनवरत लड़ा हूँ।"

(पृष्ठ ६५/६६)

कवि खण्डेलवाल में काव्य-सृजन की मौलिकता है। उन्होंने नयी सरणि तथा वृत्तियों की भी कल्पना की है। संगिनी के वियोग में व्यथित

मन के तरह-तरह के गीत गाये हैं, पर जो मन व्यथित है किन्तु संघर्षरत तथा कर्म क्षेत्र में व्यस्त है, दूसरे शब्दों में आज का कवि-मन है उसके गीतों के कथ्य नवीन होंगे। खंडेलवाल ने ऐसे ही नवीन कथ्य के गीत, अपनी संगिनी के वियोग में गाये हैं, कुछ पंक्तियाँ हैं :—

"चाहे जितनी दूर रहूँ
पर पास तुम्हीं को पाऊँ।
× × ×
आँख धुंये से भरी हुई
है, टप-टप पानी बहता;
मंडी से साबुन लेना भी
है, पर भूला रहता।
'किया नहीं लोहा कपड़ों
पर' किस पर धौंस जमाऊँ।
× × ×
कई दिनों से पड़े हुये
कपड़े छत पर फैलाये;
कमरे में हर ओर मकड़ियों
ने भी जाल बनाये।
शुक की भांति नाम रटता
मन, चाहे जो समझाऊँ।"

(पृष्ठ ७७/७८)

कवि खण्डेलवाल की भाषा सरल और सहज है। उनमें कवि-कल्पना के मौलिक तथा नवीन उत्स हैं। 'इन्द्रधनुष' में मर्म को छूने वाले तथा बुद्धि को आन्दोलित करने में समर्थ गीतों के संकलन हुए हैं। इस गीत-रचना के लिये वे साधुवाद के पात्र हैं। मैं उनके उज्ज्वल कवि-भविष्य की कामना करता हूँ।

४० ए, मोतीलाल नेहरू मार्ग
इलाहाबाद

डॉ० पारसनाथ तिवारी
रीडर, हिन्दी विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय

□□

निवेदन

मेरी अनतिदीर्घ काव्य-यात्रा के पथ का प्रथम सोपान प्रवंध काव्य 'रवि-रश्मि' और द्वितीय सोपान मेरे स्फुट गीतों का संग्रह 'इन्द्र-धनुष' है। प्रस्तुत संग्रह में तेईस गीत एवं तेरह नवगीत संग्रहीत हैं। इन्द्र-धनुष के अधिकांश गीतों का रचनाकाल इक्यासी से तिरासी के मध्य तक रहा है। माँ भारती के पावन मन्दिर में यह द्वितीय पुष्पांजलि अर्पित करते हुये मुझे हर्षातिरेक हो रहा है।

मेरे गीत मेरे अन्तर्जगत् को विभिन्न अवस्थाओं के छाया-चित्र मात्र हैं। इनमें भावनाओं के विविध रंगों का इन्द्र-धनुषी संयोग है। मैंने अपने काव्य की धारा के सहज प्रवाह को किसी वाद विशेष से जोड़ने या उसकी ओर मोड़ने का प्रयास सायास नहीं किया है; इसी लिये मेरी काव्य-वाटिका के कुसुमों पर विभिन्न प्रकार के हल्के और गहरे रंगों की छाया यत्र-तत्र देखने को मिल सकती है। परंतु इन सबमें सबसे गाढ़ा रंग छायावाद का है। आधुनिक युग के छायावादी कवियों के सौंदर्य-बोध एवं भाषा, शिल्प ने मुझे अत्यधिक प्रभावित किया है। हिन्दी कविता के धरातल पर छायावाद कोई नई अव-धारणा एवं परिकल्पना लेकर नहीं उदित हुआ है। प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि कवि अपने मनोभावों का प्रक्षेपण प्रकृति में करता रहा है इसीलिये समस्त जड़, चेतन पदार्थ हर्षोल्लास में पुलकते, झूमते और विषाद के क्षणों में रोते, क्रंदन करते दिखाई देते रहे हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि छायावादी कवियों ने पूर्वप्रचलित स्थूल एवं इतिवृत्तात्मक भाव-अभिव्यंजना शैली को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर

स्वरूप प्रदान किया तथा सौंदर्य-बोध युगीन साहित्य-सर्जना का केन्द्र-बिन्दु वन गया। छायावाद में प्रकृति कवि-हृदय का छायानुवाद वन जाती है। काव्य-जगत् में यह कोई नई परंपरा नहीं है इसलिये इसे किसी समयावधि की परिधि में बाँधना न्यायोचित नहीं कहा जा सकता।

मैंने अपने गीतों में कहीं निःसीम गगन में चहचहाने वाली विहग-टोलियों के मुख से फूट पड़ने वाले संगीत में परमेश्वर का गुणगान सुना है; तो कहीं अदृश्य करों से तुलसी के बिरवे के नीचे दीप जलाती हुई संध्या की देवी को कल्पना-लोक में मूर्तिमन्त होते हुये देखा है; और कहीं तप्त तवे के समान विकल धरती की पीड़ा से द्रवित होकर मेघों को करुणा-नीर बहाते हुये देखा है। जब मन की तुला भावनाओं के बढ़ते हुये बोझ को संभाल नहीं सकी तब गीतों की पंक्तियाँ बरबस फूट पड़ीं और इस भावातिरेक की दशा में अतृप्त मन कभी सौरभ के घन की अलकों के नीचे सो गया होगा या कभी यह गुनगुनाने को विवश हो उठा होगा 'रोते-रोते बीत गई है रजनी तारोंवाली।'

पीड़ा मेरी संगिनी रही है और वही मेरी काव्य-सर्जना का उत्स वन गई है। दुख से बोझिल मन का मेघ जब उमड़-घुमड़ कर फूट पड़ा तो नयनों से टपकने वाली प्रत्येक बूँद अधूरे सपनों का इतिहास लिखती रही है।

विद्युत्-तरंगों की सृष्टि में जलराशि की विपुलता और उसके प्रवल वेग को अवरुद्ध करने वाले सुदृढ़ तटबंध दोनों का महत्व रहता है। जब सिन्धु का लावण्ययुक्त जल प्रचंड दिनकर की उत्तप्त भट्ठी में तपकर मेघों में ढलता है तब कहीं बादलों से वसुधा को मीठा जल और नवजीवन मिलता है। जब भूतल का एक अंश साधना के

प्रखर शोलों में तपता है तब किसी प्रासाद की आधार-शिला बन पाती है। ठीक उसी प्रकार रिक्तता और अभावों की अनुभूति मेरे काव्य-सृजन को आधार प्रदान करती रही है। जीवन की निरन्तर वहती हुई सरिता में से जब कविता की धारा फूट पड़ी तो मूलधारा का प्रवाह पूर्ववत् न रह सका; वह दिनोंदिन क्षीण होता गया और उसकी गति में शिथिलता आ गई। यदि ऐसा न होता तो काव्य की धारा में अपेक्षित गतिमयता न आ पाती। लौकिक वैभव के प्रति विराग की भावना ही कविता के प्रति अनुराग का कारण बन गई।

कवि प्रकृति से तादात्म्य स्थापित कर, अप्रत्यक्ष रूप से उस परमशक्ति से एकरूपता का अनुभव करता है जो समस्त जड़, चेतन, सूर्य, चन्द्र, तारे, शैल, निर्झर, सरिता, सरोवर, सागर, सुमन, प्रात और रात के विविध रूपों में स्वयं रूपायित एवं उद्भासित होता रहता है।

उस परम स्रष्टा से समरसता की स्थिति कवि की काव्य-साधना का स्वाभाविक अंग है। सम्पूर्ण प्रकृति के लघु और विशाल जड़ और चेतन तत्व परस्पर एक दूसरे से अदृश्य डोर में गुंथे हुये हैं। सुरभि-सम्पृक्त-सुमनों के साथ कांटों का होना; गगनचुम्बी-वृक्षों के पदतल पर अनाम घास का होना; रजनीश के विपुल आलोक के साथ नील-निलय में असंख्य तारावलियों का रेणुका कणों सा टिमटिमाना; लौह-चट्टानों को तराशने के लिये मसृण निर्झर की तीक्ष्ण, तीव्र धाराओं का चयन किया जाना क्या कोई अलक्षित संयोग मात्र है? संपूर्ण प्रकृति में संघर्ष और प्रतिद्वंद्विता नहीं अपितु एकरूपता, समरसता और पूरकता है। इसी आंतरिक एकात्मता का दिग्दर्शन अनादि काल से कवि के मनीषी व्यक्तित्व ने किया है; जिसमें असीम का ससीम से, विराट् का लघु से, स्थूल का सूक्ष्म से, कठोर

का कोमल से, अंधकार का प्रकाश से, सिन्धु का सरिता से और जलनिधि का जलद से स्पष्ट तालमेल एवं प्रयोजनपूर्ण सामंजस्य परिलक्षित होता है।

संतप्रवर कबीर दास की साखियों, सबद और रमैनियों में प्रयुक्त प्रतीक योजना एवं सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावाभिव्यंजना ने संपूर्ण विश्व को प्रभावित ही नहीं अपितु चमत्कृत भी कर दिया है।

आज हिन्दी साहित्य में प्रचलित नवगीत अंशतः उसी विधा की अनुकृति मात्र हैं। नई कविता और लयात्मकता के संयोग ने नवगीत को जन्म दिया है। छंदों की पायल उतारते ही कविता नई कविता बन गई। नई कविता के खुरदुरेपन, उसमें स्निग्धता के अभाव और उस पर बौद्धिकता के वर्चस्व ने उसे जन-मानस से जुड़ने नहीं दिया किन्तु इस कमी को नवगीत ने पूरा कर दिया। हृदय की तीव्रतम अनुभूतियों की बिना किसी लाग-लपेट प्रतीकात्मक लयबद्ध अभि-व्यक्ति नवगीत की अपनी विशिष्टता है। नवगीतों की अर्थवत्ता तलोपरिक न होकर प्रतीकों की गहन गुफाओं में छिपी रहती है। विरह-वेदना से व्यथित गीतकार जहाँ नभ के तारों को गिन गिनकर रात काटता है वहीं नवगीतकार का ध्यान घड़ी की सुई और कैलेंडर की तिथियों पर केन्द्रित रहता है। मैंने नवगीतों के सृजन में अस्पष्ट एवं दुरूह प्रतीकों से बचने का प्रयास अवश्य किया है। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान्, समीक्षक कविवर डा० शम्भुनाथ सिंह द्वारा संकलित 'नवगीत दशक—१' के प्रकाशन ने मुझे नवगीत लिखने की प्रेरणा प्रदान की है। परंतु फिर भी मैं इन नवगीतों की रचना में कहाँ तक सफल हुआ हूँ इस संबंध में कुछ कहने में अपने आपको असमर्थ पा रहा हूँ।

मुझे अपने नवगीतों में कहीं 'अंजुरी के जल जैसा जीवन यह

रीता' और कहीं 'धुंये की लकीर सा जीवन यह बीता' दिखाई देता है; कभी यह पागल मन विगत वैभव की स्मृतियों में बेसुध होकर कहने लगता हैं 'ढलता दिन याद करे बीती दोपहरी' और कभी विरह वेदना से व्यथित अंतर केशर से प्रात और चंदन सी शाम से प्रियतम के नाम पत्र लिखवाने बैठ जाता है। उसी भावावेग में ये पंक्तियाँ भी फूट पड़ती हैं 'वर्फ ढका दिन ढूँढ़े दुपहर का घाम'। जिन क्षणों में देश, समाज और व्यवस्था की वर्तमान अवस्था से हृदय द्रवित हो उठता है वह कहने लगता है 'पाहन हूँ किन्तु कई बार रो पड़ा हूँ'; 'पहले था पर्वत मैं अव तो टुकड़ा हूँ'।

भूतल पर उगी हुई घास की प्राणवत्ता, चेतनता एवं सुन्दरता उसके भूमि से जुड़े रहने तक ही सीमित रहती है। मैंने अपने गीतों में अभिव्यक्ति की सहजता को वाधित कर उन्हें अलंकृत करने का प्रयास नहीं किया क्योंकि सुमनों की जो शोभा डालियों पर मुस्कुराने में है वह ड्राइंग रूम के गुलदस्ते में नहीं।

मेरी भावातिरेक की अनिर्वचनीय, समाधिस्थ अवस्था का अंश मात्र ही मेरे गीतों में ढल सका है और शेष अनभिव्यक्त अंश मेरे अंतर में निरंतर लोकोत्तर आनंद की रस-वर्षा करता रहता है। यदि इन गीतों को पढ़कर एक क्षण के लिये भी पाठक का मन-मयूर रस-वर्षा से झूम उठे; स्वर लहरी गुनगुनाने को विकल हो उठे और हृदय-कक्ष गीतों के मकरंद से महमहा उठे तो मैं इन्हें सामान्य मानवीय संवेदनाओं का वाहक अनुभव कर सकूँगा जो मेरी काव्य-कला, साहित्य-सर्जना के लिये गौरव की बात तो होगी ही साथ ही मुझे आत्म विकास के पथ पर उत्तरोत्तर वढ़ते रहने की प्रेरणा प्रदान कर सकेगी।

विजय दशमी, ओमप्रकाश खण्डेलवाल
१६ अक्तूबर ८३, प्रतापगढ़

आभार

किसी भी कवि के जीवन में काव्य-सृजन से अधिक सुखद अनुभूति का क्षण दूसरा नहीं होता और वह सुख कई गुना बढ़ जाता है जब मर्मज्ञ उसका समुचित मूल्यांकन करते हैं। लौह पुरुष, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी, साहित्य महारथी डॉ० राजेश्वर सहाय त्रिपाठी ने उ० प्र० हिन्दी साहित्य सम्मेलन के तत्त्वावधान में 'रवि-रश्मि' का भव्य विमोचन समारोह आयोजित कर प्रबंध काव्य की शताधिक प्रतियों का क्रय करके 'इन्द्र धनुष' के प्रकाशन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। वे आजकल रुग्ण हैं; मेरी परमेश्वर से प्रार्थना है कि वे स्वस्थ होकर साहित्य-सेवा करते हुये हम लोगों का मार्गदर्शन करते रहें। मैं सर्वतोभावेन उनके चरणों में श्रद्धा-वनत हूँ।

हिन्दी काव्य-जगत् की ऋचा महादेवी जी, हिन्दी साहित्य के मंगला-चरण डॉ० राम कुमार वर्मा तथा श्रद्धेय गुरुवर डॉ० पारस नाथ तिवारी के चरणों में श्रद्धापूर्वक विनयावनत हूँ जिन्होंने मेरे गीतों के रंग साहित्य के रंगमंच पर मुखरित कर दिये हैं। उनका स्नेहाशीश पाकर मेरा पर्याप्त उत्साहवर्धन हुआ एवं मेरा कवि भी गौरवान्वित हुआ है। आचार्य प्रवर डॉ० लक्ष्मी प्रपन्न शर्मा जी ने 'इन्द्रधनुष' पर अपने उद्गार व्यक्त कर मुझे प्रोत्साहित किया है मैं उनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

कृति का प्रकाशन कवि के लिये उल्लास का पर्व है, ऐसे अवसर पर कवि-परिवार के आत्मीय स्वजनों का स्मरण आवश्यक है। हिन्दी के प्रख्यात कवि श्री गुलाब खंडेलवाल का सान्निध्य मेरे लिये अनवरत प्रेरणा का स्रोत रहा है; महाकवि हरिहर बक्श सिंह 'हरीश' का अक्षय स्नेह मेरी

साहित्यिक यात्रा का संवल वन गया है। सच्चे अर्थों में उर्दू के राष्ट्रीय कवि श्री इम्तियाजुद्दीन खाँ की स्नेहिल छाया मुझे समुचित दिशा में अग्रसर होने की ओर प्रवृत्त करती रही है। जनकवि श्री आद्याप्रसाद मिश्र 'उन्मत्त' की ओजस्वी कविताओं ने मेरे हृदय में कविता के सुप्त अंकुर को प्रस्फुटित होने की प्रेरणा प्रदान की है।

इसके अतिरिक्त मेरे मित्रगण डा० रामचरित्र सिंह, डा० हंसराज त्रिपाठी, भाई एहतराम इसलाम, भाई कैलाश गौतम, भाई जगन्नाथ सहाय वर्मा एवं अन्य अनेक कवि मित्रों ने समय-समय पर मेरी रचनाओं को सराहा और अनाहूताहूत मूल्यवान परामर्श दिये; उन सभी के प्रति आभारी हूँ।

ओमप्रकाश खण्डेलवाल

अनुक्रम

गीत

नवगीत

□□

पावन है इस देश की माटी
यही मुक्ति का धाम है;
हर नारी दुर्गा की प्रतिमा
हर बालक घनश्याम है।

कंचन बिखराता प्रभात
ले, जागृति की मुसकान है;
खेत और खलिहानों में
गूंजी आल्हा की तान है।
कांत-करों से जड़-चेतन
दुलराती उषा ललाम है।

यह धरती रामायण मेरी
यही पुनीता गीता है;
राजभवन को त्याग जहां
पर, वन में रहती सीता है।
विहग-टोलियां नित्य सवेरे
लेती हरि का नाम हैं।

गंगा जल जैसी पुनीत यह
संस्कृति जग में न्यारी है;
त्रिविध-ताप-भय-शाप हारिणी
प्राणों से भी प्यारी है।
तुलसी के बिरवे के नीचे
दीप जलाती शाम है।

अभिनन्दन करती इस भू का
ऋतुयें सदा वहार हैं;
स्वर्ग-लोक से होती
जिस पर अमृत की बौछार है।
चांदी-सोने के ऊँचे
नीचे पर्वत अभिराम हैं।

श्रम-निष्ठा भौतिक समृद्धि
का, सर्वप्रथम सोपान हैं;
चंदन-सी सुरभित माटी
को, मिला यही वरदान है।
सघन—निकुञ्जों बीच आज
भी, वन में रहते राम हैं।

रोते रोते बीत गई
है, रजनी तारों वाली।

भटक रही दो लहरों से,
अनजाने कभी मिले थे;
एक दूसरे में खोने को
व्याकुल मन मचले थे।
खिली रूप की धूप अनूठी
चकाचौंध कर डाली।

मन के सूने आंगन में
थी, रजत-परी सी आई;
जैसे शून्य गगन में कोई
किरण एक मुसकाई।
सारे जग की मादकता
तेरे अधरों ने पाली।

शरद-पूर्णिमा को मावस
के, अन्धकार ने घेरा।
पतझड़ ने भी आ बसंत
के, घर में डाला डेरा;
सघन कुहांसे ने आंसू
के, दृग की मूर्ति छिपा ली।

सौरभ के घन को अलकों
के, नीचे में सोता था;
अधरों का मकरंद पान
कर, मन पुलकित होता था।
भीनी-भीनी महक अभी
तक, उड़ती गजरों वाली।

भूल गई बादल में बिजली
के रहने की बातें;
जेठ और सावन की
हमने साथ बिताईं रातें।
नभ के पथ की बैठा बैठा
करता हूँ रखवाली।

दिनमणि के स्यंदन पर
जैसे चढ़कर ऊषा आती;
उसी भांति सपनों में आ
तुम पलकों में उतराती।
एक मूर्ति में जैसे त्रिभुवन
की सुषमा हो ढाली।

उषा आरती है दिनकर
की, जो जलता निष्काम है;
जीवन के इस महायज्ञ
में, आहुति देती शाम है।

दिवस मीत रजनी का है
रजनी भी दिन की चेरी;
है प्रभात में ढलकर देती
वह मुक्ता की ढेरी।
राधा का पर्याय रात है
दिन जैसे घनश्याम है।

बादल की बाहों में ही
बिजली शीतलता पाती;
नभ के आंगन में नर्तन
करती है उसे रिझाती।
भुला सके जो अपनेपन
को, प्रेम उसी का नाम है।

पवन-हिंडोले में सुमनों
को, झूला वायु झुलाती;
दान गंध का पाकर है
अपना आँचल महकाती।
बदली की बाहों में भी
तो, लिपटा रहता घाम है।

उड़ उड़ कर भूतल का जल
भी, है बादल बन जाता;
तप्त-तवे सी भू पर है
वह करुणा-नीर बहाता।
स्पंद और निस्पंद सभी
के भीतर बैठा राम है।

मेरे सपनों की रानी
मन मधुर मिलन को तरसे।

आग लगा यौवन-मधुवन
में, तूने किया किनारा;
भटक रहा हूँ जीवन-पथ
पर, नहीं कहीं उजियारा।
चन्द्र किरण ने भी मुख
मोड़ा जाने किसके डर से।

दुनिया के मेले में तूने
मुझे अकेला छोड़ा;
ठोकर लगा लगा कर मेरे
मन का दर्पण तोड़ा।
पड़ा हुआ घायल पंछी सा
मैं विहीन हूँ पर से।

मदिराया बसन्त लहराता
मेरे घर के बाहर;
द्वार खोलते हैं कलियों
के, चंचरीक गा गाकर।
इधर नहीं आती पुरवा
भी, जाती और डगर से।

थो तू हो अधरों की वंशी
मन चाहे स्वर टेरे;
आलिंगन को तड़प रहे
हैं, ये बाहों के घेरे।
हर आंगन में झूमे सावन
मेरे नैना बरसे।

जीवन के संगीत मीत
तुम मेरे मन की धड़कन;
काट रहा हूँ सूनी रातें
नभ के तारे गिन गिन।
कौन पिलाये मधु का
प्याला अपने मदिर अधर से।

लिये आँसुओं की माला
मैं, किसके द्वारे जाऊँ;
बुझती हुई दीप की बाती
स्नेह कहाँ से पाऊँ।
उपादान ये प्रकृति-परी
के, डसते हैं विषधर से।

हम हैं भारत माँ के बेटे
इसका हमें गुमान है;
गौरवशाली संस्कृति अपनी
अपना देश महान् है।

जागृति का नवमंत्र लिये
जब दिनकर शंख बजाता है;
मोती की अंजुलि भर सागर
उसको अर्घ्य चढ़ाता है।
अंगड़ाई लेकर ऊषा
भरती मीठी मुसकान है।

दीपक सा चुपचाप यहाँ
पर, जलने की परिपाटी है;
त्याग, दया, करुणा के सुमनों
से सुरभित यह माटी है।
सत्य, अहिंसा, मानवता की
अपनी धरती खान है।

यहाँ कर्म के द्वारा मानव
अपना भाग्य बदलते हैं;
धुरी धर्म की होती जिसके
कार्य चतुर्दिक चलते हैं।
उपकारी कण कण इस भू
का, कहता सकल जहान है।

वीर-प्रसविनी मातृभूमि के
मुख पर आज उदासी है;
यह धरती बलिदान मांगती
उष्ण रक्त की प्यासी है।
प्राणों का उत्सर्ग देश पर
करे वही भगवान है।

सुंदर सोने की खिड़की में
उषा खड़ी मुसकाती;
धवल चांदनी रातें मुझको
सारी रात जगाती।

मानसरोवर में उत्पल सा
है तेरा मुखमण्डल;
मधुप-टोलियाँ मांग रहीं
तेरी पलकों का काजल।
रूप-अनूप देख विधु
बाला, मन ही मन शरमाती।

सुंदरता छाया के मिस
चरणों को चूमा करती;
गंध चुराकर वायु वहीं
मस्ती में झूमा करती।
सजी हुई दुल्हन की डोली
मन का चैन चुराती।

नभ के तारे तोड़ तोड़
कर तेरी मांग सजाई;
अपने अरमानों की खुद
हो, मैंने चिता जलाई।
याद हंस के जोड़े को
रह रह कर मुझे सताती।

जेठ महीने के सपने में
सरस घटा घिर आई;
पर वहार आने के पहले
हृदय - कली कुम्हलाई।
व्यथा और बढ़ती जब
संध्या करती है संझबाती।

मन के सूने मन्दिर में
थी, सुंदर मूर्ति सजाई;
टूट गया मन का दर्पण
अब दे कैसे दिखलाई।
बीती यादें आंसू की
बूंदों में हैं ढल जाती।

महक उठो तेरो अलकों
से, आज रात की रानो।

शशि-बाला आई जूड़े में
नभ के कुसुम सजाये;
पत्थर के उर के भोतर
भी, जैसे आग लगाये।
चुपके से कह जाती रजनी
बोती प्रेम कहानी।

प्रेमी सागर को बाहों
में, भर लेती विधु-बाला;
पिला रही रोमांचित कर
उसको अधरों की हाला।
सुधियों की बयार का
झोंका, करता है मनमानी।

हैं कजरारे, मतवारे ये
मदिर सरोवर लोचन;
मन में मादकता भर
देतो, गोरी तेरी चितवन।
पलकें बाड़ सदृश हैं तट
पर करता तम नादानी।

घूंघट सरकाता प्रभात—
निशि का किरणों के कर से;
रजनी और दिवस गाते
संगीत एक ही स्वर से।
मूंग दल रही छाती पर
है प्रकृति बड़ी अनजानी।

मुसकाती ऋतुपति के
स्वागत में सुमनों की डाली;
पतझड़ के आते ही रोती
है फूलों से खाली।
कीमत जल की मरुथल
में ही जाती है पहचानी।

वीरों का शोणित इस भू
का कण कण है महकाता।

करते चांद और सूरज
हैं, निशिदिन जिसके फेरे;
साहस है इतना किसमें
जो आकर इसको घेरे।
रत्न जटित चूनर सावन
लाकर इसको पहनाता।

नभ के मान सरोवर में
बिखरे हैं अगणित मोती;
उन्हें चांदनी हंस सदृश
चुन चुन कर भू पर बोती।
ऋद्धि, समृद्धि, सिद्धि वाला
यह स्वर्गिक सुख का दाता।

जहां सुदामा के पग धोती
थी, करुणा की धारा;
शापित पड़ी अहल्या को
था, पुरुषोत्तम ने तारा।
यहाँ पवन का हर झोंका
इतिहास—पृष्ठ कह जाता।

जहां द्रोपदी की रक्षा
को युद्ध रचाये जाते;
और कर्म निष्काम मनुज
का धर्म कृष्ण बतलाते।
भारत के जीवन-दर्शन
का यश सारा जग गाता।

राजपूत ललनाओं ने
हँस पिये गरल के प्याले;
वीर अनय की चट्टानों
से लोहा लेने वाले।
रुधिर वीर पुत्रों का
है, माँ की तसवीर सजाता।

एक क्रान्ति की चिनगारी
थी रानी लक्ष्मी बाई;
अगणित जीवन दीप बुझे
तब यह आजादी आई!
भाषा, वेश, प्रदेश भिन्न
हैं, पर भाई का नाता।

जीवन है यंत्रवत
किन्तु अनमना हूँ।

भय से दुर्घटना के
आँख खुली रहती;
अनकही कहानियाँ
अश्रु - धार कहती।
घुनघुना लगता, पर
शुष्क मैं चना हूँ।

हर्ष और क्लेश का
असर नहीं होता;
पत्थर सा शापित
निस्पंद पड़ा सोता।
लगता हूँ हरा किन्तु
बाँस सा घुना हूँ।

थका थका अपने को
शव सा हो जाता;
अंगों में टूटन ले
बेसुध सो जाता।
ढोता मैं भार, शक्ति
से कई गुना हूँ।

घड़ा एक पानी का
जगह जगह चूता ;
भर जाऊँ कितना भी
फिर भी तो रीता।
धारा में बहता मैं
वृक्ष का तना हूँ।

व्यथा-वेदना से जल जल
कर, जो पड़ गये फफोले हैं;
द्वार उन्हीं के मैंने अपने
इन गीतों में खोले हैं।

युग युग से संतप्त मनुज
के मौन मुखर हो बोले हैं;
नयन-तुला के द्वारा मैंने
अपने आंसू तोले हैं।

युग की धड़कन पहचानी
जब रोते हृदय टटोले हैं;
अन्दर की चिनगारी से
फटते बारूदी गोले हैं।

देश-प्रेम की पावन ज्वाला
उर में लिये जिया करता हूं;
भारत माँ का बेटा हूँ
कण कण से नेह किया करता हूँ।

भूखे, नंगे, कंकाल बने
है सुप्त प्राय जिनकी धमनी;
टूटी कुटियों में पलते हैं
ढोते सिर पर लाशें अपनी।
मैं ऐसे दीन अकिन्चन के
अंतर के घाव सिया करता हूँ।

आसमान पर रहने वाला
तुम धरती की ओर निहारो;
जो अभाव में हो पलते हैं
उन्हें शक्ति दो, उन्हें संवारो।
मानवता की मृत्यु देख मैं
दुख का गरल पिया करता हूँ।

असन्तोष की चिनगारी जब
बढ़कर नभ की ओर चलेगी;
भस्म करेगी स्वर्ण महल को
किञ्चित रोके नहीं रुकेगी।
इसी चुनौती भरे हुये स्वर
से, आह्वान किया करता हूँ।

आज महल को ऊँचाई को
अपना शीश झुकाना होगा;
और कुटी को संबल देकर
ऊपर और उठाना होगा।
शोषण - मुक्त समाज बने
यह सत्संकल्प लिया करता हूँ।

बलिदानी वीरों की जननी
एक नहीं शत वार नमन है;
तेरी पावन भू का कण कण
मेरे माथे का चंदन है।
तेरा दीप न बुझने पाये
जीवन-स्नेह दिया करता हूँ।

कस लेता है बाँहों में
प्रिय पावन प्रेम तुम्हारा।
मिलता है जब ढाल कहीं
या ढहता हुआ किनारा।

गति-अवरोधक सा मिलता
है अनजानी राहों में;
मन पर ब्रेक रखता
जब उड़ता है नभ की चाहों में।
नग्न-डालियों ने पल्लव
परिधान रागमय धारा।

पाते ही अनुकूल मुझे
जो ले नभ में उड़ जाती;
होते ही प्रतिकूल पाँव
में बेड़ी वह पहनाती।
डोर तुम्हारे हाथों में
मैं वायु भरा गुब्बारा।

संकट के क्षण के पहले
संकेत लाल मिल जाता;
कभी चतुर्दिक भटके मन
के, है दीवार उठाता।
उड़ने पर अनंत नभ
में भी देता नीड़ सहारा।

जो करता है सपनों का
नूतन संसार बसाऊँ।

दिन बसंत सा सस्मित हो
हर निशा माधवी महके;
नभ के सूने आंगन में
बस प्रेम-विहग ही चहके।
सुरभि लुटाता कदम कदम
पर डगर डगर महकाऊँ।

केले के पत्ते में यदि
कांटा कोई चुभ जाये;
राका धवल पट्टियां बांधे
मलय वात सहलाये।
सकल चराचर के अंतर
में, अपने को ही पाऊँ।

जहाँ चांदनी बांट रही
हो, घूरों को उजियांरा।
देवशीश से जनरंजन को
उतरो अमृत धारा।
अभ्र सदृश थोड़ा जल
लेकर कई गुना बरसाऊँ।

जहाँ सहारा पाती हों
तरु से अबला लतिकायें;
पर्वत मालाओं को झरनें
कंठहार पहनायें।
डूब डूब कल्पना सिंधु
में, चुन चुन मोती लाऊँ।

मैं कैसे मानूं इस जग
को, तेरा प्रत्यावर्तन ?

तेरो बगिया में निशिदिन
नूतन बसंत है खिलता;
पर इस उपवन में कांटों
का, राज हमें है मिलता।
पतझड़ में कैसे वसंत
का, हो पाये प्रतिबिंबन ?

तेरे आंगन में रवि, शशि
हैं, यहां गहन अंधियारा;
तू असीम नभ सा फिर
भी, क्यों दी जीवन की कारा ?
जब तू पूर्ण स्वयं है तो
फिर, जग में क्यों रीतापन ?

जब तू ही घट घट के
भीतर, तो क्यों दुख होता है ?
क्या तू ही मन के भीतर
से, सिसक सिसक रोता है ?
धूप, छांव या तुझमें भी
होता कोई परिवर्तन ?

तेरे घर हरियाली मेरे
घर अकाल की छाया;
तुझे न कोई दुख पर
मैंने दुख ही दुख है पाया।
घोर विषमता है जग को
कह दूँ कैसे छायांकन ?

पहली बार मनाऊँगी
सखि ! संग पिया के होली।

आने को हैं दिवस कई
पर मन में हलचल होती;
पत्तों की खड़-खड़ सुन
कर उठ जाती सोती सोती।
सीपी सी मोती से मैं
भर लूंगी अपनी झोली।

थी वियोग में उनके मैं
अब तक भू पर ही सोती;
तकिया कभी कभी आंचल
साड़ी का रही भिगोती।
हूक उठा करती अंतर
में, सुन कोयल की बोली।

लीप पोतकर साफ किये
सारे खिड़की चौबारे;
जान रही हूँ आयेंगे कल
पर बैठी हूँ :रे।
आंख मीच लेती हूँ जब
दिखती है कोई डोली।

हरे रंग की साड़ी पहनूँगी
उनके मन भाई
हेम-यामिनी में प्रिय से
उपहार सदृश जो पाई ।
आयेंगे तो साथ नई
लायेंगे मेरी चोली ।

गालों पर गुलाल प्रियतम
जब भर मुट्ठी रगड़ेंगे;
सिहर उठेगा रोम रोम
जब बाहों में जकड़ेंगे ।
अधरों पर नूपुर दृग
में, होगी सपनों की टोली ।

यह बसंत ऋतु या दर्पण
में, है तेरी ही छाया।

तुम चलती फुलवारी सी
आंचल में कुसुम छिपाये;
अमराई से जम्हुआया सा
पवन दौड़ कर आये।
गंध और मकरंद पान
कर, फिरता है इठलाया।

खेतों ने है सोने के
गहनों की हाट सजाई;
कंगन है, नथुनी भी है
है बिछिया भी मनभाई।
देख देख कर कृषक
गोरियों का मन भी हरषाया।

मुकुट बांध कर स्वागत
में, पुलकित आमों की डाली;
कोयल की मीठी पुकार
या भरी शहद की प्याली।
किस प्रेमी ने सरसों पर
सोने का शाल ओढ़ाया।

मोहन की पिचकारी से
बन गई सिन्दूरी रेखा;
गालों पर गुलाल बिखरा
या है ऊषा की लेखा।
आंगन में पाकर तुमको
यह फागुन भी बौराया।

प्रिये ! तुम्हारे भीतर
किसने है संसार बसाया।

केश-राशि मुख पर जैसे
मिलते दोनों पखवारे;
या संघर्ष शील रजनी
दिन के प्रकाश से हारे।
सत्यरूपिणी ! तिमिर तुम्हारे
सम्मुख कब टिक पाया।

कान लग रहे हैं पाटल
पर, हों सोने की तितली;
दन्तावलियों का विलास
ज्यों चमक रही हो बिजली।
तेरी चंचलता के आगे
मारुत स्वयं लजाया।

फूलों की घाटी में आंचल
भी मलयज सा डोले;
सुप्त कामना के द्वारों
को थपकी दे दे खोले।
ऊषा ने सोये हिम शिखरों
को है स्वयं जगाया।

गंगा जल सी दृष्टि पुनीता.
वेद ऋचा सी वाणी;
चरण-चरण पर होम हुआ
सा, श्वांस श्वांस कल्याणी।
मानस की चौपाई हो
वाणी का अर्घ्य चढ़ाया।

आया होली का हुड़दंग

बहकी बहकी चाल
कि लगता हुये सभी दीवानें;
रंग बिरंगी आकृतियां
कोई कैसे पहचानें।
हवा झूमती है मस्तानी
जैसे पीकर भंग।

रंग ड्रमों में भरकर
बैठे बंदर घात लगाये;
परिचित और अपरिचित
सबको जी भरकर नहलायें।
बहू जेठ पर छज्जे
से, डाले गगरी भर रंग।

कहती है भाभी लाला
जी, पकड़ो नहीं कलाई;
आखिर कुछ तो शरमाओ
मैं लगती हूँ भौजाई।
घर के भीतर छिड़ो
हुई है जैसे कोई जंग।

ढोल मंजीरा बजा रहो
निकली मस्तों की टोली;
हा - हा - हू - हू करता
कोई कोई करे ठिठोली।
नाचें गायें धूम मचायें
लोग सभी संग संग।

मुन्ना बोला तुतला कर,
'दो पीतल की पिचकाली;
'वेतन तो पाया पर
बेटा जेब हुई है खाली'।
'अच्छा तो फिर स्याही
का ही घोल रहा हूँ लंग'।

भेद भाव को भूल लोग
यों गले सभी मिलते हैं;
एक डाल पर दो गुलाब
ज्यों एक साथ खिलते है।
लुकते छिपते राही को
करते दौड़ा कर तंग।

होता है हर साल नगर
में महा मूर्ख सम्मेलन;
दिखता है वृद्धों में यौवन
तरुणाई में बचपन।
नस-नस में बिजली
सा दौड़े जैसे स्वयं अनंग।

जिस तरह चांदनी बिन पूछे
घर के अंदर घुस आती;
उसी भांति यादें भी तेरी
अनचाहे आ जाती।

जब वसंत ऋतु में चलती
पीकर पराग पुरवाई;
रोम-रोम करता है जानें
क्यों तेरी पहुनाई।
रहती जितनी दूर हृदय को
हो उतनी ही भाती।

बूंदों की झालर वाली
घंघरी सावन पहनाता;
पीले और लाल पुष्पों
से, आंचल हरा सजाता।
पर बरखा की शीतल
रातें अंगारे भड़काती।

जब भी होती है पड़ोस
में, कोई कहीं बिदाई;
कानों में गूंजा करती
मीठी मीठी शहनाई।
बिरही मन पर मृदु स्वर
लहरी भी है तीर चलाती।

रेशम के सपनों से
अपने दृग का कक्ष सजाया;
मौसम, बे मौसम भी नयनों
में सावन घिर आया।
मन-तुरंग की बागडोर
अब मुझसे संभल न पाती।

आंसू से भीगी पलकें
अब भाग्य लिखेगी मेरा;
पीड़ा का साम्राज्य रहेगा
चारों ओर अंधेरा।
जुगनू से दीपक की
आशा है मन को भरमाती।

अपने आंसू दे दो
इनको गीतों में ढालूँगा।

मेघों के दृग-जल से
जब, धरती झोली भर लेती;
अपने नीरव आंचल को
वह हरा भरा कर लेती।
कांटे लेकर पुष्पों का
उपहार तुम्हीं को दूँगा।

जो चाहो सो ले लो पर
थाती मेरी रहने दो;
अंतर की पीड़ा सावन
बनकर दृग से बहने दो।
सब कुछ खोकर भी इन
गीतों में सब कूछ पा लूंगा।

स्नेह मुझे दे दो थोड़ा
मैं दे दूँगा उजियारा;
पी लूंगा मैं घिरा हुआ
पथ का सारा अंधियारा।
दूर रहोगे तो बस केवल
गीत गुनगुना लूंगा।

फिर बदली घिर आई ।

जिन नयनों में अब तक
ऊषा, करती थी अठखेलीं;
उनमें करुणा-दीप जलाती
नीरव सांझ अकेली ।
धूमिल यादों के पट बुनती
सी गोधूली आई ।

हृदय-सरोवर में नित नूतन
रजत-कुमुदनी हँसती;
हार गूंथ कर किरणों का
थी तुम स्वागत को चलती ।
पर अब मावस ने चादर
काली काली फैलाई ।

लेकर अश्रु-धार नयनों में
सुमन डाल से टूटा;
स्वप्न-मुकुर निर्दयी शिला
से आहत होकर फूटा ।
आकृति भी रह गई अधूरी
पूर्ण नहीं बन पाई ।

नहीं ओस के बिन्दु-अपितु
आंखें हैं मेरी रोतीं;
पीड़ा ही बिखरी माला
के संजो रही है मोती ।
बिखरी बूंदों के दर्पण
में पड़ती तुम दिखलाई ।

ओ असीम ! मैं तो ससीम
तुमसे कैसे मिल पाऊँ ?

तुम अनंत-नभ में पक्षी
सा, करता प्रतिदिन फेरे;
प्राण थक गये किन्तु न
पाया आदि अन्त को हेरे।
पाऊँ जब सम्मुख तब
ही तो अपना शीश नवाऊँ।

सागर के ऊपर नभ का
निःसीम वितान तना है;
जलनिधि से यह मेघ बना
या उससे सिन्धु बना है ?
लोक कौन सा है जिसमें
मैं तुझे खोजने जाऊँ।

सागर क्या सरिता से
अपना कोई भेद छिपाता ?
अथवा तारों से मिलने
में गगन कभी सकुचाता ?
जिनसे देख सकूं मैं
तुमको नयन कहाँ से लाऊँ।

यदि असीम होते तो
मेरी सीमा में आ जाते;
रवि, शशि जैसे दिग्मण्डल
पर बस तुम भी छा जाते।
ज्योति-पुंज हो तो फिर
तम को कृति किसकी बतलाऊँ ?

विकल करते हो तन मन प्राण
कौन हो तुम जाने अनजान ?

पलकों की नीरव छाया में
चुपके से आ बैठा कौन ?
कुछ तो परिचय दे दो
अपना, रहते हो प्रतिपल क्यों मौन ?
सागर-तट की गहराई का
तुम्हें न है कोई अनुमान।

क्या अधरों पर लेकर दौड़े
हो, मृग की मरुथल सी प्यास ?
गहरी छाया में होता है
तुमको निर्झर का आभास।
झेल सकोगे क्या जब इस
घाटी में आयेगा तूफान ?

गहन गुफा में चोरों जैसे
बैठे हो छिपकर गुमनाम;
क्या तुम अनजाने नीड़ों
में, करते रहते हो विश्राम।
है पिछली कोई पहचान
या कि हो भोले तुम नादान।

अथवा मोती चुनने आये
हो तुम मानसरोवर तीर;
पर इनमें केवल पाओगे
अविरल बहता करुणा नीर।
तुम आतप से पीड़ित
लगते, पर मैं सावन से हैरान।

नवगीत

मीलों के पत्थर की
भाँति मैं गड़ा हूँ।

बदले हैं मौसम नें
अपने यों तेवर;
दिन को भी भाते हैं
रातों के ज़ेवर।
पथराई आँख लिये
साक्ष्य - सा खड़ा हूँ।

सोने की गुड़िया को
लोहे के गहनें;
हमको भिखमंगा भी
लोग लगे कहनें।
पाहन हूँ किन्तु कई
बार रो पड़ा हूँ।

प्रतिभा की गायों का
वैदेशिक दोहन;
गोकुल में शेष नहीं
अब कोई मोहन।
पहले था गिरिवर मैं
अब तो टुकड़ा हूँ।

सूरज पर बर्फ की
शिलाओं के पहरे।
शीतल इस देह में
मूक हैं शिरायें;
पाहन की मूर्ति सी
सहती सब जायें।
स्पंदन से हीन
सभी लगते हैं बहरे।

राखों के ढूह में
सोई चिनगारी
नशीली हवाओं
को अपनी लाचारी।
आशा में झंझाको
कब तक वह ठहरे।

जड़ता में पर्वत
की सोई सरितायें;
दहक उठे अंतर में
तब बाहर आयें।
ज्योति को निगल गये
रात के अंधेरे।

कुहरों पर पड़ते हैं
किरणों के कोड़े।

धुँये के मकान में
घुट घुट कर जीना;
अपने ही हाथों से
घावों को सीना।
भट्ठी हर लोहे को
मनचाहा मोड़े।

थोड़े से मेघों ने
चाँदनी चुरा ली;
सुरसा ने तारों को
पाँत ही पचा ली।
धरती ने अंकुर
से, रिश्ते सब छोड़े।

पी-पी कर रक्त
मिली गुड़हल को लाली;
कुत्तों ने मांस
खा, हड्डियाँ चबा ली।
रौंदते अंधेरों को
सूरज के घोड़े।

मानस से उभरा
यह काली दोपहरी;
नीरवता मरघट की
छायी है गहरी।
बहरी प्राचीरों में
क्रंदन दम तोड़े।

सरिता के तट पर—
मैं वृक्ष सा खड़ा हूँ।

आतप में धारा पर
टकटकी लगाये;
पावस में धार स्वयं
लिपट लिपट जाये।
टूटती कगारों के
मध्य भी अड़ा हूँ।

पौधों को देख देख
फूला इतराया;
बड़ा नहीं अपने से
औरों को पाया।
अम्बर के सम्मुख
तो, तृण का टुकड़ा हूँ।

भार बना भू पर
जड़ शिथिल हुई थोड़ी;
इठलाती लहरों ने
कसर नहीं छोड़ी।
दौड़ती हवाओं से
अनवरत लड़ा हूँ।

हरा भरा ऊपर से
भीतर से पोला;
वर्षा हिम आतप
को बाहों पर तोला।
चिकना हूँ कहीं किन्तु
कहीं तो सड़ा हूँ।

पक्षी - दल करते थे
डाल पर बसेरा;
पथिकों ने छाया में
डाला था डेरा।
अंतर में दाह लिये
मृतक सा पड़ा हूँ।

केशर सा प्रात और
सन्दल सी शाम।
पत्र सभी लिखते
हैं, प्रिय तेरे नाम।

किसी एक बिन्दु पर
आँखें टिक जायें;
निर्निमेष पलकें भी
बोझिल हो आयें।
सपनों में तिरते
हैं, फूलों के जाम।

घुटन बढ़ी अंतर
में, बढ़ रहा दबाव;
माथे की नस नस
में दौड़ता तनाव।
पीड़ा को मिलते
नित नूतन आयाम।

अस्त व्यस्त कपड़े
ज्यों लोहे को टेरें;
कुछ बिखरे केश
ज्यों कंघी को हेरें।
बर्फ ढका दिन ढूंढ़े
दुपहर का घाम।

रात हो गई दिन में
तम से ढका शहर।

जंगल में आग लगी
राह में धंधलके;
सोया है सूरज भी
राख रही जलके।
मेघों में सूखापन
कट गई नहर।

रक्त बूंद बो बोकर
मोती उपजाये;
विनिमय में उनके
बस आंसू ही पाये।
बोते बारूद लोग
हो गये निडर।

पग पग पर टीले
हैं, जगह जगह खाई;
जंग लगे गेंतों से
होती कठिनाई।
टीलों से दोस्ती
हैं ढा रही कहर।

मानचित्र हाथ में
किन्तु सब भटक रहे;
चलते हैं लीक छोड़
हर जगह अटक रहे।
दीपक से आयातित
हम ढूंढ़ते डगर।

अखबारी बंडल को
दीमक ने चाटा।

पूनम पर मावस
ने, टांक दिये अक्षर;
पर्वत थे, खांई थी
और कहीं गह्वर।
रिश्तों के सेतु
ने, दूरी को पाटा।

हार जीत खेल की
छपी ग़ज़ल कहानी;
पियराई फसल कभी
मांग रही पानी।
बोया था हमने
पर औरों ने काटा।

खास खास मौकों
पर विशेषांक निकले;
फूलों के रंग विविध
स्याही में बदले।
नीरवता मरघट की
कभी ज्वार - भाटा।

कहीं व्यंग चित्र, कहीं
हँसती फुलझड़ियाँ;
कहीं ढली भाषा में
करुणा की लड़ियाँ।
कोलाहल बन जाता
अक्सर सन्नाटा।

ट्रेन की प्रतीक्षा में
खड़ा है भिखारी।

बीत गये तीन दशक
झोली फैलाये;
भूखा का भूखा ही
कुछ भी पा जाये।
कोई विचकाये मुंह
कोई दे गारी।

रुकते ही गाड़ी पर
झट से चढ़ जाये;
रोये भी, गाये भी
और गिड़गिड़ाये।
सोने के बाँटों से
तुलती है नारी।

कहता है बाबू कुछ
जूठन ही दे दे;
या मेरे बच्चों को
उतरन ही दे दे।
कर रहा दुआयें मैं
मालिक से भारी।

जगह जगह घावों
पर पट्टियाँ लपेटे;
जोड़े वह हाथ कभी
पाँवों में लेटे।
अपने से बेखबर
मृग सा अविचारी।

ढलता दिन याद
करे बीती दोपहरी।

सोई दरवाज़ों में
प्रीति की कहानी;
टपटप कर खिड़की
से, बहता है पानी।
मेघों के पर्दे में
ऊषा थी ठहरी।

कुसुम - युग्म खिलते
ही, महकी अंगनाई;
सुरभि - स्नात राका
थी, लेती अंगड़ाई।
पत्तों की डालों से
यारी थी गहरी।

गिरता है टूट - टूट
ईंटों से गारा;
ढह रहे पलस्तर
ने भित्ति को निहारा।
बिछुड़ रही कंगन
सी, प्यारी यह देहरी।

बेगुनाह नदियों को
सूर्य ने छला है;

चूस लिया उसने तो
जल उनका सारा;
बाँटा कुछ मेघों
को, फिरते आवारा।
हरित वर्ण सिगनल
भी वहीं से मिला है।

जाल कभी सोने का
रवि ने फैलाया;
पोर - पोर तीलियाँ
चुभो चुभो दुखाया।
सांठ गांठ करने कुछ
अभ्र से चला है।

बड़े बड़े जलचर कुछ
मछलियाँ निगल गये;
कुछ मछुये पाटों के
पास ही फिसल गये।
हहराती धार में
रोष ही पला है।

कभी रश्मि लहरों
को पालने झुलाये;
ज्यादा जब उछलें
तो पीठ थपथपाये।
उत्पीड़न और मनुहार
तो कला है।

अँजुरी के जल जैसा
जीवन यह रीता ।

स्मृतियों के दर्पण
में, धुंधली रेखायें;
छिटक जाँय कभी, कभी
पास सिमट आयें ।
धुंये की लकीर सा
जीवन यह बीता ।

उछलें कुछ नाज़ से.
निःस्वन सो जायें;
अंतर में सागर के
लहरें खो जायें ।
सिकता पर लिख
देता पूर्णिमा अतीता ।

रेत के घरौंदों से
चमकीले सपने;
किरकिर सी आँखों
की आज हुये अपने ।
कुछ बिखरे पन्नों को
क्रम से रख सीता ।

चाहे जितनो दूर रहूँ
पर पास तुम्हों को पाऊँ।

एक बार चूल्हा जल
पाये, जारूँ जब दस तोली;
बार-बार जलकर बुझ जाये
है, लकड़ी भी गीली।
चाय एक प्याली पर
शक्कर दो-दो बार मिलाऊँ।

आँख धुँये से भरी हुई
है, टप-टप पानी बहता;
मण्डी से साबुन लेना
भी, है पर भूला रहता।
'किया नहीं लोहा कपड़ों
पर' किस पर धौंस जमाऊँ।

अनभ्यस्त तन के कपड़े
मैं धोऊँ और निचोड़ूँ;
थोड़ा काम करूँ बाकी सब
अगले दिन पर छोड़ूँ।
मरामरा सा यह उचाट
मन, इसको कहाँ लगाऊँ।

कई दिनों से पड़े हुये
कपड़े छत पर फैलाये;
कमरे में हर ओर मकड़ियों
ने भी जाल बनाये।
शुक की भाँति नाम रटता
मन चाहे जो समझाऊँ।

मेज़ और खिड़की दरवाज़ों
पर भी धूल पड़ी है;
लाल करौंदे पर आंगन
के, सहसा दृष्टि गड़ी है।
पिङ्ग-पल्लवों के अंतर
में, डूब - डूब उतराऊँ।

गोधूली से स्नेह माँगती
तुलसी की संझबाती;
शायद याद किया तुमने
ही, रह-रह हिचकी आती।
उठूँ नींद में चौंक-चौंक
फिर जगता ही रह जाऊँ।

सिन्दूरी शाम है
सेतु दिवा-रात की।

गालों पर हिलते यों
लहराते कुन्तल;
जैसे हो रजनी के
अंतर की हलचल।
करती अगुवानी हो
रात ज्यों प्रात की।

अलकें उलझी हुई
ढेर से सवाल सी;
बिखरी हों रात में
मछुये के जाल सी।
आखेटक रूप का
कोशिश में घात की।

बादल की डोली में
सोया है चन्दा;
या अमृत-घट पर हो
रेशम का फन्दा।
मेघों ने किरणों से
जैसे कुछ बात की।

"आधुनिक हिन्दी साहित्याकाश को 'रवि-रश्मि
से प्रकाशित कर सुधी सुकवि श्री ओमप्रकाश
खण्डेलवाल ने 'इन्द्र धनुष' की विविधवर्णी गीत
कला से कलरवमय ही नहीं किया है अपितु
उसमें कल्पना के विहग को उन्मुक्त स्वर एवं
स्वच्छन्द पर देकर यथार्थ की धरती से पदो
न्नयन कर, सांस्कृतिक उत्कर्ष का स्पर्श करने के
लिये नवगीत, नवलय और अभिनव ताल छं
भी दिये हैं। इन्द्र धनुष में सप्तवर्णों का संक
नयनाभिराम प्रतीत होता है। अभिनव उपमानों
नये प्रतीकों और नूतन विम्वविधानों से कवित
की चारुता 'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति तदेव रू
रमणीयतायाः' का स्मरण दिलाती है।"

डॉ० लक्ष्मी प्रपन्न शर्म
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
प्रतापगढ़
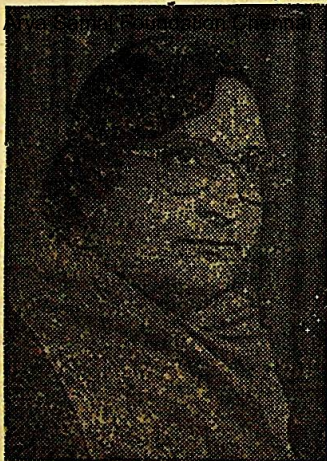
ओमप्रकाश खण्डेलवाल

प्रकाशित कृतियाँ

रवि-रश्मि	(प्रबंध काव्य)
इन्द्र धनुष	(गीत संग्रह)

अप्रकाशित कृतियाँ

करुणायतन	(प्रगीत)
दूर्वा	(नई कविता)
गंगार्चन	(प्रबंध काव्य)
तथागत	(प्रबंध काव्य)
रक्त दीप	(प्रबंध काव्य)